सीखने की प्रक्रिया में अनुपयोगी बातों और गतिविधियों का महत्व

स्वतंत्र रिछारिया

- क्यों फालतू काम कर रहे हो?
- सीधे नहीं बैठ सकते क्या, क्यों चिल्ला रहे हो?
- ज़्यादा मत बोला करो, ये क्या बकवास है?
- फिज़ूल की बातें मत किया करो।

वयस्कों द्वारा बच्चों को डाँटते हुए अक्सर इन वाक्यों को सुना जा सकता है। मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य का व्यवहार तर्क और भावना, दोनों का सम्मिश्रण है, और मनुष्य के लिए ये दोनों ही आवश्यक हैं। समाजीकरण और व्यक्तित्व विकास में - सार्थक के साथ निरर्थक, उपयोगी के साथ अनुपयोगी, सभी तरह की प्रक्रियाओं एवं गतिविधियों की आवश्यकता होती है। बच्चों के 0-5 वर्ष के प्रारम्भिक दौर को देखें तो हम समझ सकते हैं कि बच्चों का अधिकांश समय गैर-तार्किक एवं अनुपयोगी कार्यों में व्यतीत होता है। बच्चों की यह गैर-तार्किक, असंगत, बेमतलब गतिविधियाँ ही उनके सीखने की प्रक्रिया को संचालित करती हैं।

बच्चों का वास्तविक स्वभाव

बच्चे की प्रारम्भिक भाषा गैर-तार्किक और बेतुकी ध्वनियों और आवाज़ों से प्रारम्भ होती है जो आगे

चलकर एक स्पष्ट भाषा का रूप ले लेती है। बच्चों की खेल गतिविधियाँ किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु न होकर सिर्फ आनन्दित होने के लिए होती हैं। अपने आसपास के बच्चों के व्यवहार को देखें तो हम जान सकते हैं कि बच्चे सामान्य रूप से बेतुकी आवाज़ों को निकालते हुए चिल्ला रहे होते हैं, वे असंगत तरीके से कूदते और दौड़ते हुए नज़र आते हैं। यह सब उनके लिए आनन्द प्राप्त करने का माध्यम होता है। वयस्कों को बच्चों की इन गैर-तार्किक, बेतुकी बातों और गतिविधियों को तर्क और अनुशासन के आधार पर समझ पाना अक्सर कठिन होता है।

बच्चों में तनाव के कारण

निराशा, असफलता, अवसाद और तनाव तीव्र गति से दौड़ते आज के उत्तर-आधुनिक समाज के कुछ सामान्य शब्द हैं। वैसे तो इन शब्दों से मानव अपने जीवन काल में कई बार आमना-सामना करता है पर आज के युवा, खासकर बच्चे और किशोर तनाव का कुछ ज़्यादा ही सामना कर रहे हैं। जब हम बच्चों एवं किशोरावस्था में व्याप्त इस बेचैनी और तनाव का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं, तब समाज की दो प्रमुख सामाजिक संस्थाएँ इसके लिए उत्तरदायी समझ आती हैं। परिवार और स्कूल दो प्रमुख सामाजिक संस्थाएँ हैं जो बच्चों के समाजीकरण और ज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया को मुख्य रूप से संचालित करती हैं।

इन दोनों संस्थाओं की प्रक्रियाओं और गतिविधियों को देखें तो हम जान सकते हैं कि आज स्कूल और परिवार, दोनों ने ही अपने आपको इस प्रकार संरचित कर लिया है जिसमें बच्चों/किशोरों के लिए व्यक्तिगत रुचि, स्वतंत्रता, और मनोगत रचनात्मकता के अवसर बहुत कम मिल पाते हैं। स्कूल के पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम और नियमों के आधीन बच्चे 6-7 घण्टे रोज़ स्कूल में व्यतीत करते हैं। स्कूल में होने वाली प्रार्थना से लेकर अन्तिम घण्टे तक बच्चे शिक्षक या स्कूल के निर्देशों का पालन कर रहे होते हैं। स्कूल के इन घण्टों में मौलिक अभिव्यक्ति एवं सहभागिता बच्चों को बमुश्किल मिल पाती है।

'बच्चों की आवाज़ व अनुभवों को कक्षा में अभिव्यक्ति नहीं मिलती। प्रायः केवल शिक्षक का स्वर ही सुनाई देता है। बच्चे केवल अध्यापक के सवालों का जवाब देने के लिए या अध्यापक

के शब्दों को दोहराने के लिए ही बोलते हैं। कक्षा में वे शायद ही कभी स्वयं कुछ करके देख पाते हैं। उन्हें पहल करने के अवसर भी नहीं मिलते हैं। किताबी ज्ञान को दोहराने की क्षमता के विकास की बजाए पाठ्यचर्या बच्चों को इतना सक्षम बनाए कि वे अपनी आवाज़ ढूँढ़ सकें, अपनी उत्सुकता का पोषण कर सकें, स्वयं करें, सवाल पूछें, जाँचें-परखें और अपने अनुभवों को स्कूली ज्ञान के साथ जोड़ सकें'। (एनसीएफ 2005)

फ्रेंच दार्शनिक 'फूको' स्कूल को जेल, फैक्ट्री और अस्पताल के समतुल्य रखते हैं और बताते हैं कि यह अनुशासन, शक्ति और सत्ता के अभ्यास का साधन है जिसमें तरह-तरह के उपकरण सम्मिलित रहते हैं। इनका उद्देश्य 'विनम्र शरीर' और 'आज्ञाकारी चेतना' का विकास करना होता है।

कुछ समय पहले तक बच्चे घर आकर स्कूल के इस अति-अनुशासित और तनाव के माहौल को भूल जाते थे, क्योंकि घर में वे अपने मन का व्यवहार करते हुए वह सब कर सकते थे जो उन्हें आनन्दित करे, ऊर्जावान करे। घर/परिवार स्कूल के अनुशासन और तनाव को कम करने हेतु एक सेफ्टी वॉल्व की तरह काम करते थे। पर अति-प्रतियोगिता आधारित इस समय में, जहाँ आर्थिक रूप से सफल होना ही अन्तिम लक्ष्य है, घर को भी स्कूल/कॉलेज का उप केन्द्र बना दिया गया है।

अन्तहीन अपेक्षाएँ

अभिभावकों की अन्तहीन अपेक्षाएँ बच्चे की मौलिक अभिव्यक्ति की सम्भावनाएँ समाप्त कर देती हैं। घरों में भी बच्चों को अनुशासित रहते हुए वही सब करने का आदेश अभिभावकों द्वारा पारित किया जाता है, जिससे आने वाले समय में उनका बच्चा आर्थिक रूप से सफल बन सके। अगर स्कूल और घर की प्रक्रियाओं का सूक्ष्म अवलोकन करें तो दोनों में एक बड़ी समानता देखने को मिलती है और वह है सिर्फ और सिर्फ सार्थक कार्यों हेतु अति आग्रह।

स्कूल और अभिभावक अपेक्षा करते हैं कि बच्चे सिर्फ ऐसे सार्थक कार्यों और बातों में संलग्न रहें जिनसे उन्हें भविष्य में सफलता प्राप्त हो सके। स्कूल और घर बच्चों को अपने मन के निरर्थक, बेतुके, अनुपयोगी कार्यों और खेल गतिविधियों को समाप्त करने पर तुले हुए हैं। बड़ों को लगता है कि यह सब जो बच्चे कर रहे हैं वह अनुपयोगी है और बच्चे समय खराब कर रहे हैं।

वयस्कों ने बच्चों की दिनचर्या और पालन-पोषण को इतना जटिल बना दिया है कि बच्चों को अपने मन का कार्य/गतिविधि करने के लिए न तो कोई समय है, और न ही कोई स्थान। ध्यान से देखने पर हम जान सकते हैं कि वास्तव में 24 घण्टे के दिन में बच्चों के पास अपने मन का कुछ करने के लिए बिलकुल भी समय नहीं

है। बच्चे सिर्फ वयस्कों द्वारा निर्धारित नियमों, मूल्यों अपेक्षाओं के अनुरूप ही व्यवहार करने को मजबूर हैं। बच्चे क्या चाहते हैं? उनकी मौलिक अभिव्यक्ति और उनका स्वतंत्र रूप से व्यवहार करना क्यों आवश्यक है? इन महत्वपूर्ण प्रश्नों की चिन्ता न तो स्कूल को है, और न ही अभिभावकों को।

'बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है। हमारे स्कूल आज भी सभी बच्चों को ऐसा महसूस नहीं करवा पाते। सीखने का आनन्द व सन्तोष के साथ रिश्ता होने की बजाए भय, अनुशासन व तनाव के सम्बन्ध हों तो यह सीखने के लिए अहितकारी होता है'। (एनसीएफ 2005)

अनुपयोगी कार्यों का महत्व

बच्चे तो क्या, अगर वयस्क भी अपने व्यवहार को स्वःअवलोकित करें,

तो जान सकते हैं कि वे भी अपने दैनिक व्यवहार और गतिविधियों में गैर-तार्किक और अनुपयोगी कार्यों को अंजाम देते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मानसिक सन्तुलन और व्यक्तित्व स्थायित्व हेतु तर्क और अनुशासन के साथ-साथ गैर-तार्किक, अनुपयोगी कार्यों का भी अपना विशेष महत्व है।

बच्चों के सीखने की प्रक्रिया को संचालित करते समय स्कूल, अभिभावक और समाज यह भूल जाते हैं कि अति अनुशासन और अतिसंरचित नियम एवं गतिविधियाँ व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार के वातावरण में बच्चे अपनी मौलिक अभिव्यक्ति खो देते हैं, और उनकी प्रश्न करने एवं जिज्ञासा की प्रवृत्ति क्षीण होने लगती है।

कुछ दशक पूर्व स्कूलों और अभिभावकों ने बच्चों को स्वाभाविक खेल-कूद और आनन्दित होने के अवसर से दूर करने के लिए एक्टिविटी क्लास के रूप में एक नई अवधारणा को जन्म दिया। स्कूल या बच्चों के पेशेवर क्लब में एक्टिविटी क्लास के अन्दर व्यक्तित्व विकास के नाम पर खेल, संगीत, गायन, डांस, चित्रकारी, घुड़सवारी, तैराकी आदि गतिविधियों को संचालित किया जाता है। वयस्कों को लगता है कि इन एक्टिविटी क्लास में बच्चों का मनोरंजन होता है और वे एक नए कौशल को सीख रहे हैं जिनसे उनके व्यक्तित्व में निखार आएगा। ज़्यादातर

समय बच्चे इस तरह की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेते हैं क्योंकि ये गतिविधियाँ उनके लिए वास्तविक आनन्द प्रदान करने में असमर्थ होती हैं।

वयस्क, बालमन से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण बात भूल जाते हैं। बच्चे उन्हीं गतिविधिओं को करते हुए आनन्दित महसूस करते हैं जिनका चयन वे अपने द्वारा करते हैं। बच्चों के स्वाभाविक चयन की बजाय वयस्कों/स्कूल द्वारा तय किए गए खेल या अन्य गतिविधियाँ बच्चों को एक पाठ्य कक्षा की भाँति लगते हैं। बिना मन के तैराकी, संगीत या खेल गतिविधि उन्हें गणित या विज्ञान की क्लास की भाँति अरुचिकर ही लगने लगती है।

परिवर्तन की आवश्यकता

सीखने के प्रारम्भिक 5-7 वर्षों में बच्चे केवल उन्हीं गतिविधियों में पूर्णता से सहभागी हो पाते हैं जिनमें उन्हें आनन्द प्राप्त होता है। बच्चे किसी भी कार्य को उपयोगी होने के आधार पर नहीं चुनते हैं, बल्कि उनके किसी कार्य, गतिविधि या खेल को चुनने का एकमात्र आधार उससे प्राप्त होने वाला आनन्द होता है। अगर बच्चों को अनुशासन एवं भय के ज़रिए किसी भी प्रकार की गतिविधि में उनकी इच्छा के बिना सम्मिलित किया जाता है, तब सीखने की प्रक्रिया तो बाधित होती ही है, साथ में बच्चों के व्यक्तित्व पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

यदि अभिभावक और स्कूल बिना तनाव, अवसाद या दमन के समाजीकरण और ज्ञान अर्जित करने की प्रक्रिया को संचालित करना चाहते हैं, तो उन्हें घर एवं स्कूल में इस अति-संरचित, अति-अनुशासित, अति-सार्थक-आग्रही व्यवस्था को परिवर्तित करना होगा। बच्चों को स्कूल की शिक्षण प्रक्रिया एवं घर में ऐसे अवसर उपलब्ध कराने होंगे जिनमें बच्चे अपनी भावनाओं, इच्छाओं को मौलिक रूप से अभिव्यक्त कर सकें। विभिन्न शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक शोध से यह ज्ञात हुआ है कि बच्चे हों या वयस्क – वे सब तभी अपनी उच्च क्षमताओं को प्रदर्शित कर पाते हैं, जब उन्हें कार्य करने हेतु या सीखने हेतु ऐसा वातावरण उपलब्ध कराया जाता है जिसमें वे मौलिक रूप से अपनी भावनाओं, इच्छाओं, विचारों, दृष्टिकोण आदि को प्रदर्शित कर पाते हैं।

कक्षाओं में हो शून्य काल

स्कूल की पाठ्यचर्या को बनाते समय विभिन्न विषयों की कक्षाओं के साथ-साथ बच्चों को मौलिक अभिव्यक्ति हेतु अनिवार्य रूप से विशेष समय उपलब्ध कराना होगा। जिस प्रकार संसद की कार्यवाही में एक शून्य-काल को सम्मिलित किया गया है जिसमें किसी भी प्रश्न को सम्बन्धित उत्तरदायी व्यक्ति से पूछा जा सकता है। उसी प्रकार स्कूल की दिनभर की समय-सारिणी में एक कक्षा शून्य कक्षा/काल घोषित किया जाना चाहिए जिसमें

बच्चे अपने सभी बेतुके, बेमतलब के मौलिक प्रश्न पूछ पाएँ एवं हर क्षण उत्पन्न होने वाली समुन्दर की लहरों की भाँति अपनी अन्तहीन जिज्ञासाओं को पूरा कर पाएँ।

स्कूल की इस शून्य-कक्षा में बच्चों को चिल्लाने, बोलने, नाचने सहित उन सभी अतार्किक बातों को करने की छूट होनी चाहिए जिन्हें वे सामान्य विषयगत कक्षाओं और स्कूल की दिनचर्या में नहीं कर पाते हैं। स्कूल के साथ अभिभावकों को भी घर पर ऐसे अवसर उपलब्ध कराने होंगे जिनमें बच्चे अपनी मौलिक अभिव्यक्ति का प्रदर्शन कर सकें। घर को पुनः उस सेफ्टी वॉल्व की भाँति कार्य करना होगा जिसमें बच्चे बाह्य समाज के द्वारा और शैक्षिक प्रक्रिया से उत्पन्न तनाव को कुछ कम कर सकें।

आज समाज, स्कूल और अभिभावकों को अपना अनिवार्य नैतिक दायित्व समझते हुए, बच्चों को तनाव, अवसाद आदि से बचाने हेतु घर और स्कूल की इस अति-संरचित, अति-अनुशासित एवं अति-सार्थक आग्रही व्यवस्था में कुछ समय मौलिक अभिव्यक्ति हेतु प्रदान करना होगा। व्यक्तित्व निर्माण और सीखने की प्रक्रिया में तार्किक, अनुशासित और व्यवस्थित प्रक्रियाओं एवं बातों के साथ-साथ जीवन में गैर-तार्किक, निरर्थक, अनुपयोगी बातों और गतिविधियों के महत्व को समझना होगा। बच्चों के कल्याण के लिए तर्क और भावना के बीच उचित सन्तुलन आवश्यक है। तभी हम बच्चों के वास्तविक सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित कर पाएँगे।

स्वतंत्र रिछारियाः समाजशास्त्र में पढ़ाई। पिछले दस वर्षों से शिक्षा और सामाजिक विकास के क्षेत्र में योगदान दे रहे हैं। स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में बीबीसी मीडिया एक्शन इंडिया के साथ मिलकर काम किया है। वर्तमान में बुन्देलखण्ड में आदिवासी शिक्षा और ग्रामीण आजीविका के क्षेत्र में *विकास पथ* संस्था के साथ कार्य कर रहे हैं।
सभी चित्रः हीरा धुर्वेः भोपाल की गंगा नगर बस्ती में रहते हैं। चित्रकला में गहरी रुचि। साथ ही 'अदर थिएटर' रंगमंच समूह से जुड़े हुए हैं।